राजस्थान उच्च न्यायालय, जोधपुर पीठ

एकलपीठ आपराधिक विविध (याचिका) संख्या 5735/2022

सुरेंद्र कुमार पुत्र स्व. दलीचंद, उम्र लगभग 40 वर्ष, निवासी शिवगंज तहसील शिवगंज जिला, सिरोही.

----याचिकाकर्ता

बनाम

1. राजस्थान सरकार
2. दुर्गा राम पुत्र लुंबा राम, उम्र लगभग 51 वर्ष, निवासी कलापुरा शिवगंज जिला, सिरोही

----प्रत्यर्थीगण

याचिकाकर्ता (गण) की ओर से	श्री दीपक चौधरी
प्रत्यर्थी (गण) की ओर से	श्री एम.एस. भाटी, लोक अभियोजक

न्यायमूर्ति दिनेश मेहता

आदेश

रिपोर्ट करने योग्य

13/09/2022

1. आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के तहत वर्तमान याचिका दायर करते हुए, याचिकाकर्ता ने विद्वान सत्र न्यायाधीश, सिरोही (इसके बाद "रिविजनल कोर्ट" के रूप में संदर्भित) द्वारा पारित दिनांक 05.08.2022 के आदेश को चुनौती दी है, जिससे अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, शिवगंज (इसके बाद "ट्रायल कोर्ट" के रूप में संदर्भित) द्वारा पारित आदेश दिनांक 25.03.2022 के खिलाफ याचिकाकर्ता द्वारा दायर पुनरीक्षण याचिका अपास्त कर दी गई।
2. वर्तमान मामले के लिए प्रासंगिक तथ्य यह है कि एक दुर्गाराम मेघवाल (बाद में "शिकायतकर्ता" के रूप में संदर्भित) ने पुलिस अधीक्षक, सिरोही के समक्ष एक लिखित शिकायत दर्ज की, जिसमें कहा गया कि संबंधित अदालत के रीडर की मिलीभगत से, वर्तमान याचिकाकर्ता सचिंदर शर्मा और उनके अधिवक्ता मोहब्बत सिंह

देवड़ा ने याचिकाकर्ता की रिहाई सुनिश्चित करने के लिए ज़मानत बांड के साथ संलग्न सॉल्वेंसी प्रमाणपत्र का दुरुपयोग किया, जो शिकायतकर्ता ने एक अन्य मामले में कुछ अन्य आरोपियों के लिए दिया था।

3. जांच के बाद, पुलिस ने याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप-पत्र दायर किया, जिसके बाद, दिनांक 25.03.2022 के आक्षेपित आदेश द्वारा, विद्वान निचली अदालत ने याचिकाकर्ता के खिलाफ भारतीय दंड संहिता (इसके बाद इसे "आईपीसी" कहा जाएगा)। की धारा 205, 420, 468 और 471 के तहत अपराध के लिए आरोप तय किए।

4. निचली अदालत के उपरोक्त संदर्भित आदेश के खिलाफ, याचिकाकर्ता ने एक पुनरीक्षण याचिका दायर की, जिसे विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय ने दिनांक 05.08.2022 के आदेश के अनुसार अपास्त कर दिया। इसलिए, वर्तमान याचिका दायर की गई है।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री चौधरी ने इस बात पर प्रकाश डालते हुए कि जब याचिकाकर्ता के जमानत बांड भरे गए थे, तब याचिकाकर्ता सलाखों के पीछे था, तर्क दिया कि याचिकाकर्ता को ऐसे जमानत बांड भरने में शामिल नहीं कहा जा सकता है।

6. यह भी तर्क दिया गया कि दंड प्रक्रिया संहिता (इसके बाद 'संहिता' के रूप में संदर्भित) की धारा 195 में निहित अनिवार्य निषेध के मद्देनजर, न तो पुलिस मामले की जांच कर सकती है और न ही कोई अदालत उस पर आरोप तय कर सकती है। ऐसी एफआईआर का आधार आईपीसी की धारा 205, 420, 468 और 471 के तहत किए गए अपराधों का आरोप है, क्योंकि अदालत केवल अदालत के अधिकारी या संहिता की धारा 195 के तहत उल्लिखित सक्षम प्राधिकारी द्वारा दायर शिकायत के अनुसार ही संज्ञान ले सकती है।

7. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने ***नरेंद्र कुमार श्रीवास्तव बनाम बिहार सरकार (2019) 3 एससीसी 318*** में प्रकाशित के मामले में दिए गए माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता को सुना, विद्वान लोक अभियोजक को सुना और

रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

9. याचिकाकर्ता के तर्कों से केवल दो मुद्दे सामने हैं जो इस प्रकार हैं:

(i) क्या अपनी रिहाई के लिए जाली दस्तावेज़ प्रस्तुत करने के समय याचिकाकर्ता की कैद विवादित कार्यवाही को अपास्त करने का आधार है?

(ii) क्या संहिता की धारा 195(1)(ख) के तहत निर्धारित प्रक्रिया के कथित गैर-अनुपालन के आधार पर विवादित कार्यवाही को अपास्त कर दिया जाना चाहिए?

10. रिकॉर्ड से यह स्पष्ट है कि आरोपी थाना राम के मामले में जो जमानत बांड प्रस्तुत किया गया था, उसका याचिकाकर्ता या उसके साथियों द्वारा शिकायतकर्ता के फर्जी हस्ताक्षर और उसके सॉल्वेंसी प्रमाणपत्र के साथ याचिकाकर्ता के पक्ष में दुरुपयोग किया गया है।

11. जांच के बाद, पुलिस ने याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप-पत्र दायर किया है, क्योंकि याचिकाकर्ता एकमात्र लाभार्थी था और उसने शिकायतकर्ता का रूप धारण करके किसी को जमानत बांड पर हस्ताक्षर करने के लिए भेजा था।

12. गौरतलब है कि जांच के दौरान पुलिस उस शख्स को ढूंढने में नाकाम रही है जिसने जमानत बांड पर हस्ताक्षर किए थे। हालांकि, याचिकाकर्ता ने पूछताछ में भरत का नाम लिया था, लेकिन एफएसएल रिपोर्ट से पता चला कि जमानत बांड पर भरत ने हस्ताक्षर नहीं किए थे और तदनुसार भरत का नाम आरोपियों की सूची से हटा दिया गया था।

13. कथित जाली जमानत बांड जमा किए जाने पर याचिकाकर्ता के सलाखों के पीछे होने का तथ्य, याचिकाकर्ता के पक्ष में पूर्ण बचाव नहीं हो सकता है। हो सकता है, वह वह व्यक्ति नहीं था जिसने ज़मानत बांड पर हस्ताक्षर किए थे, लेकिन यह उसके कहने पर या उसके लाभ के लिए किया गया था। याचिकाकर्ता की भूमिका की पूर्ण अनुपस्थिति साक्ष्य का मामला है और इस तरह के तर्क या बचाव पर साक्ष्य पूरा होने के बाद केवल अंतिम सुनवाई के समय ही विचार किया जा सकता है। इसलिए, यह न्यायालय पहले मुद्दे का उत्तर नकारात्मक में देता है।

14. दूसरे मुद्दे पर विचार करने से पहले संहिता की धारा 195(1)(ख) की योजना को निर्धारित करना प्रासंगिक होगा, जिसका प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:

> ***"195. लोक सेवकों के वैध प्राधिकार की अवमानना, सार्वजनिक न्याय के विरुद्ध अपराधों और साक्ष्य में दिए गए दस्तावेजों से संबंधित अपराधों के लिए अभियोजन।***
>
> (1) *कोई भी न्यायालय संज्ञान नहीं लेगा-*
>
> *.....*
>
> *(ख) (i) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की निम्नलिखित धाराओं में से किसी के तहत दंडनीय कोई भी अपराध, अर्थात् धारा 193 से 196 (दोनों सम्मिलित),*
>
> *199, 200, 205 से 211 (दोनों सम्मिलित) और 228, जब ऐसा अपराध किसी न्यायालय में या किसी कार्यवाही के संबंध में किया गया हो, या*
>
> *(ii) धारा 463 में वर्णित किसी भी अपराध का, या उक्त संहिता की धारा 471, धारा 475 या धारा 476 के तहत दंडनीय, जब ऐसा अपराध साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत या* ***<u>दिए गए दस्तावेज़ के संबंध में किया गया हो। किसी भी न्यायालय में कार्यवाही,</u>*** *या*
>
> [उस न्यायालय या न्यायालय के ऐसे अधिकारी द्वारा, जिसे वह न्यायालय इस संबंध में लिखित रूप में अधिकृत कर सकता है, या किसी अन्य न्यायालय, जिसके वह न्यायालय अधीनस्थ है, की लिखित शिकायत को छोड़कर।"

15. संहिता की धारा 195(1)(ख) को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि न्यायालय आईपीसी की धारा 205 के तहत अपराध का संज्ञान नहीं ले सकती हैं, जब ऐसा अपराध <u>किसी कार्यवाही में या उसके संबंध में किया गया हो।</u> किसी भी अदालत में और आईपीसी की धारा 471, 475 या 476 के तहत अपराध, जब ऐसा अपराध किसी न्यायालय में <u>किसी कार्यवाही में प्रस्तुत किए गए या साक्ष्य के रूप में दिए गए दस्तावेज़ के संबंध में</u> किया गया हो, <u>लिखित शिकायत को छोड़कर।</u> न्यायालय या न्यायालय के ऐसे अधिकारी द्वारा <u>जिसे वह न्यायालय इस संबंध में लिखित रूप</u>

से प्राधिकृत कर सकता है, या किसी अन्य न्यायालय द्वारा जिसके वह न्यायालय अधीनस्थ है।

16. वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता के खिलाफ आईपीसी की धारा 205, 420, 468 और 471 के तहत दंडनीय विभिन्न अपराधों का आरोप लगाया गया है, जिनमें से आईपीसी की धारा 205 एक गैर-संज्ञेय अपराध है, जो धारा 195 के दायरे में आती है। (1)(ख)(i), जबकि शेष अपराध (धारा 420, 468 और 471 के तहत) संज्ञेय अपराध होने के कारण धारा 195(1)(ख)(ii) के अंतर्गत आते हैं।

17. संहिता की धारा 154 के आधार पर, पुलिस किसी संज्ञेय अपराध की सूचना प्राप्त होने पर ही अपनी जांच आगे बढ़ा सकती है, जबकि संहिता की धारा 155(3) के तहत दिए गए प्रावधानों के अनुसार, किसी गैर की सूचना प्राप्त होने पर - संज्ञेय अपराध में पुलिस को जांच आगे बढ़ाने की इजाजत के लिए मुखबिर को मजिस्ट्रेट के पास भेजना होगा। लेकिन धारा 155 की उपधारा (4) स्पष्ट रूप से प्रदान करती है कि जहां कोई मामला दो या दो से अधिक अपराधों से संबंधित है, जिनमें से कम से कम एक संज्ञेय है, तो मामले को संज्ञेय मामला माना जाएगा, भले ही अन्य अपराध गैर-संज्ञेय हों। धारा 155(4) को पुन: प्रस्तुत करना अप्रासंगिक नहीं होगा जो इस प्रकार है:

"155. गैर-संज्ञेय मामलों की जानकारी और ऐसे मामलों की जांच।

(4) जहां कोई मामला दो या दो से अधिक अपराधों से संबंधित है, जिनमें से कम से कम एक संज्ञेय है, तो मामले को संज्ञेय मामला माना जाएगा, भले ही अन्य अपराध गैर-संज्ञेय हों।

18. संहिता की धारा 154, 155(3) और 155(4) को सामूहिक रूप से पढ़ने का शुद्ध परिणाम यह है कि पुलिस धारा 205 के तहत कई अपराधों का आरोप लगाने वाली सूचना पर याचिकाकर्ता के खिलाफ आईपीसी की धारा 420, 468 और 471 और धारा 154 के तहत कार्रवाई कर सकती है।

19. याचिकाकर्ता की जांच करने की पुलिस की शक्ति के प्रश्न का निपटारा करने के बाद, यह न्यायालय अब ऐसे मामलों का संज्ञान लेने की न्यायालय की शक्ति से निपट सकता है। संहिता की धारा 190 एक मजिस्ट्रेट को (1) उन तथ्यों की शिकायत प्राप्त

होने पर संज्ञान लेने की शक्ति प्रदान करती है जो ऐसे अपराध का गठन करते हैं; (2) या ऐसे तथ्यों की पुलिस रिपोर्ट; (3) या पुलिस अधिकारी के अलावा किसी अन्य व्यक्ति से प्राप्त जानकारी, या उसकी स्वयं की जानकारी पर, कि ऐसा अपराध किया गया है।

20. विवादित कार्यवाही को इस आधार पर चुनौती दी गई है कि विद्वान मजिस्ट्रेट ने पुलिस रिपोर्ट के आधार पर या एफआईआर को आगे बढ़ाते हुए कार्रवाई की है। याचिकाकर्ता का ऐसा रुख कानून के स्पष्ट प्रावधानों के आलोक में पूरी तरह से गलत है - सबसे पहले, क्योंकि संहिता की धारा 155(4) पुलिस को पूरे मामले को संज्ञेय मानने की अनुमति देती है जहां शिकायत संज्ञेय और गैर-दोनों प्रकार के कमीशन का आरोप लगाती है। संज्ञेय अपराध और दूसरा, क्योंकि संहिता की धारा 190(1)(क) अदालत को पुलिस रिपोर्ट के आधार पर संज्ञान लेने की अनुमति देती है।

21. यह हमें संहिता की धारा 195(1)(ख) के तहत निहित बार और वर्तमान मामले में इसकी प्रयोज्यता के प्रश्न की ओर ले जाता है। यह देखते हुए कि वर्तमान मामले में आरोप संहिता की दोनों धाराओं 195(1)(ख)(i) और 195(1)(ख) (ii) के तहत निहित प्रतिबंध से संबंधित हैं, यह न्यायालय सबसे पहले इससे निपटना उचित समझता है। वे आरोप जो संहिता की धारा 195(1)(ख)(ii) के तहत दिए गए प्रतिबंध के अंतर्गत आते हैं। धारा 195(1)(ख)(ii) के तहत प्रतिबंध एक दस्तावेज़ के संबंध में लागू होता है जो 'किसी भी न्यायालय में कार्यवाही में प्रस्तुत किया जाता है'। माननीय उच्चतम न्यायालय ने इस मामले में दिए गए अपने निर्णय में ***सचिदा नंद सिंह बनाम बिहार राज्य और अन्य एआईआर 1998 एससी 1121 में*** प्रकाशित में इस वाक्यांश की व्याख्या प्रतिबंधात्मक तरीके से की है, जो कानून निर्माताओं के इरादे के अनुरूप है। उसका प्रासंगिक भाग यहां नीचे दिया गया है:

> *"9. इसके अलावा धारा 195(1)(ख)(ii) की व्याख्या करना मुश्किल है क्योंकि इसमें अभियोजन कार्यवाही शुरू करने पर केवल इसलिए रोक है क्योंकि संबंधित दस्तावेज अदालत में प्रस्तुत किया गया था, भले ही जालसाजी का कार्य अदालत में प्रस्तुत करने से पहले किया गया हो। अदालत। ऐसे किसी भी निर्माण से अप्रिय परिणाम होने की संभावना है। उदाहरण के लिए, यदि किसी मूल्यवान दस्तावेज़ के रैंक जालसाजी का*

पता चला है और जालसाजी को यकीन है कि वह आसन्न रूप से अभियोजन कार्यवाही में उलझ जाएगा, तो वह आसानी से उस दस्तावेज़ को किसी भी लंबे समय तक चलने वाले मुकदमे में प्रस्तुत कर सकता है, जिसे या तो स्वयं या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा स्थापित किया गया था। उससे प्रभावित हो जाएं और इस तरह उस मुकदमे के लंबित रहने की पूरी लंबी अवधि के लिए अभियोजन को रोक दें। यह एक स्थापित प्रस्ताव है कि यदि किसी कानून की भाषा एक से अधिक व्याख्या करने में सक्षम है, तो जो शरारतपूर्ण परिणाम देने में सक्षम है उसे टाला जाना चाहिए। गिल वी. डोनाल्ड हम्बरस्टोन एंड कंपनी लिमिटेड, 1963 1 डब्लू.एल.आर.929 से उद्धृत करते हुए मैक्सवेल ने अपनी संधियों (संविधि की व्याख्या, 12 वां संस्करण, पृष्ठ 105) में कहा है कि "यदि भाषा एक से अधिक व्याख्या करने में सक्षम है तो हमें इसे त्याग देना चाहिए।" अधिक स्वाभाविक अर्थ यदि यह अनुचित परिणाम की ओर ले जाता है और उस व्याख्या को अपनाएं जो उचित व्यावहारिक परिणाम की ओर ले जाती है"। जिस खंड पर अब हम विचार कर रहे हैं, उसमें यह दिखाने के लिए पर्याप्त संकेत हैं कि अधिक प्राकृतिक अर्थ वह है जो सख्त निर्माण के पक्ष में झुकता है, और इसलिए उपरोक्त अवलोकन यहां प्रमुखता से लागू होता है।

.....

12. संहिता की धारा 340(1) में परिकल्पित प्रारंभिक जांच का दायरा यह सुनिश्चित करना है कि क्या न्याय प्रशासन को प्रभावित करने वाला कोई अपराध अदालत में प्रस्तुत किए गए दस्तावेज़ के संबंध में किया गया है या उस अदालत में कार्यवाही में साक्ष्य के रूप में दिया गया है। ***<u>दूसरे शब्दों में, अपराध उस समय के दौरान किया जाना चाहिए था जब दस्तावेज़ हिरासत में था।</u>***

24. उपरोक्त चर्चा का अनुक्रम यह है कि संहिता की धारा 195(1)(ख)(ii) में निहित प्रतिबंध उस मामले पर लागू नहीं होता है जहां दस्तावेज़ की जालसाजी अदालत में दस्तावेज़ प्रस्तुत करने से पहले की गई थी।

तदनुसार हम इस अपील को अपास्त करते हैं।"

22. इस न्यायालय का मानना है कि यदि कोई दस्तावेज़, जो पहले से जाली है, बाद में किसी न्यायालय में साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जाता है या दिया जाता है, तो उस पर धारा 195(1) में अंतर्निहित रोक नहीं लगती है। (ख)(ii). दूसरे शब्दों में, आईपीसी की धारा 463, 471, 475 और 476 के तहत अपराधों के संबंध में शिकायत दर्ज करने या एफआईआर दर्ज करने का किसी भी व्यक्ति का अधिकार केवल इस तथ्य से समाप्त या समाप्त नहीं हो जाता है कि जाली दस्तावेज़ अदालती कार्यवाही में बाद में तैयार किया गया है।

23. इसके अलावा, धारा 195(1)(ख)(ii) का प्रतिबंध तब लागू होता है जब कोई दस्तावेज़ साक्ष्य के रूप में दिया जाता है। वर्तमान मामले में, जाली जमानत बांड और सॉल्वेंसी प्रमाणपत्र, जो एक अलग मामले से लिया गया था और जमानत बांड के साथ प्रस्तुत किया गया था, जाहिर तौर पर जमानत की शर्तों का पालन करने के लिए याचिकाकर्ता के लाभ के लिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि इसे निचली अदालत में 'साक्ष्य' में प्रस्तुत किया गया है।

24. भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 3 इस प्रकार है:

> **""प्रमाण"** "साक्ष्य" का अर्थ है और इसमें शामिल हैं (1) वे सभी बयान जिन्हें न्यायालय जांच के तहत तथ्य के मामलों के संबंध में गवाहों द्वारा अपने समक्ष दिए जाने की अनुमति देता है या अपेक्षित करता है; ऐसे कथनों को मौखिक साक्ष्य कहा जाता है; (2) [<u>न्यायालय के निरीक्षण के लिए प्रस्तुत इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड सहित सभी दस्तावेज;</u>] ऐसे दस्तावेजों को दस्तावेजी साक्ष्य कहा जाता है।"

न तो जमानत बांड और न ही सॉल्वेंसी प्रमाणपत्र उस मामले के तथ्यों से संबंधित है। अत: इन्हें 'प्रमाण' नहीं कहा जा सकता। वाक्यांश "न्यायालय का निरीक्षण" को संहिता में 'साक्ष्य' शब्द के उपयोग के साथ पढ़ा जाना चाहिए जो न्यायिक साक्ष्य है, अर्थात जिरह द्वारा परीक्षण किया गया मौखिक साक्ष्य, और दस्तावेजी साक्ष्य जो सिद्ध हो चुका है और जो है प्रासंगिक एवं स्वीकार्य माना गया है।

25. साक्ष्य अधिनियम की धारा 5 का उल्लेख करना उचित होगा जो इस प्रकार है:

"5. मुद्दे में तथ्यों और प्रासंगिक तथ्यों का साक्ष्य दिया जा सकता है।

किसी भी मुकदमे या कार्यवाही में विवाद में मौजूद प्रत्येक तथ्य और ऐसे अन्य तथ्यों के अस्तित्व या गैर-अस्तित्व का साक्ष्य दिया जा सकता है, जिन्हें इसके बाद प्रासंगिक घोषित किया गया है, किसी अन्य का नहीं।"

26. साक्ष्य अधिनियम की धारा 195(1)(ख)(ii) और धारा 3 और 5 को संयुक्त रूप से पढ़ने से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि धारा 195(1)(ख)(ii) में निहित प्रतिबंध लागू नहीं होता है।

27. शिकायतकर्ता के जाली हस्ताक्षर बनाना और उसका उपयोग जाली जमानत बांड तैयार करने के लिए करना और शिकायतकर्ता के सॉल्वेंसी प्रमाणपत्र का उसकी अनुमति के बिना उपयोग करना ऐसे कार्य हैं जो अदालत में ऐसे जाली दस्तावेजों के प्रस्तुत से पहले होंगे। शिकायतकर्ता के जाली हस्ताक्षर का कार्य शिकायतकर्ता द्वारा दायर की गई एफआईआर के आधार पर याचिकाकर्ता - एकमात्र लाभार्थी को फंसाने के लिए पर्याप्त है। संहिता की धारा 195(1)(ख)(ii) मौजूदा मामले में शिकायतकर्ता के एफआईआर दर्ज करने के अधिकार और धारा 190(1) के तहत मजिस्ट्रेट द्वारा मामले के आगामी संज्ञान को नहीं रोकेगी।

28. इसके अलावा, जमानत बांड और सॉल्वेंसी प्रमाणपत्र की प्रामाणिकता पर विश्वास करना कार्यवाही का हिस्सा नहीं है। न्यायालय, आम तौर पर, ऐसे जमानत बांड की वास्तविकता पर संदेह नहीं करती हैं। यदि याचिकाकर्ता जैसे बेईमान व्यक्ति को संहिता की धारा 195(1)(ख)(ii) में निहित प्रतिबंध का लाभ दिया जाता है, तो यह धोखाधड़ी को बढ़ावा देगा। लेकिन शिकायतकर्ता या संबंधित व्यक्ति की सतर्कता के कारण, न्यायालय को ऐसी धोखाधड़ी के बारे में कभी पता नहीं चलेगा।

29. वर्तमान तथ्यात्मक परिदृश्य में, संहिता की धारा 195 की बाधा उन आरोपों पर अधिक से अधिक लागू हो सकती है जो आईपीसी की धारा 205 के तहत अपराध बनते हैं, लेकिन, उस मामले में भी, शिकायतकर्ता से अपेक्षा या पूछा नहीं जा सकता है कुछ अपराधों के लिए पुलिस स्टेशन जाना और फिर शेष अपराधों के लिए अदालत का दरवाजा खटखटाना, जब वे एक ही लेनदेन या लेनदेन से उत्पन्न होते हैं।

30. यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि चाहे अपराध संज्ञेय हो या गैर-संज्ञेय, जांच पुलिस द्वारा की जाएगी और मुकदमा न्यायालय द्वारा किया जाएगा। इसलिए, जब आरोपों के समूह में संज्ञेय और गैर-संज्ञेय दोनों तरह के अपराध शामिल हों, तो पुलिस एफआईआर दर्ज कर सकती है; मामले की जाँच करें; आरोप-पत्र दायर करें; और फिर, मजिस्ट्रेट संज्ञान ले सकता है।

31. इस स्तर पर संहिता की धारा 195 के तहत उल्लिखित मामलों के लिए निर्धारित प्रक्रिया को बढ़ावा देना प्रासंगिक होगा जो संहिता की धारा 340 के तहत प्रदान की गई है जो इस प्रकार है:

> **"**340. धारा 195 में उल्लिखित मामलों में प्रक्रिया.— **(**1) जब, इस संबंध में <u>या अन्यथा</u> किए गए आवेदन पर, किसी न्यायालय की राय है कि न्याय के हित में यह समीचीन है कि संदर्भित <u>किसी भी अपराध की जांच की जानी चाहिए धारा</u> 195 की उपधारा (1) के खंड(ख) में, जो उस न्यायालय में किसी कार्यवाही के संबंध में या, जैसा भी मामला हो, उत्पादित या दिए गए दस्तावेज़ के संबंध में किया गया प्रतीत होता है उस न्यायालय में किसी कार्यवाही में साक्ष्य, ऐसा न्यायालय, <u>ऐसी प्रारंभिक जांच के बाद,</u> यदि कोई हो, जैसा वह आवश्यक समझे,-
>
> (क) उस आशय का निष्कर्ष रिकॉर्ड करें;
>
> (ख) इसकी लिखित शिकायत करें;
>
> (ग) इसे क्षेत्राधिकार वाले प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट को भेजें;
>
> (घ) ऐसे मजिस्ट्रेट के समक्ष अभियुक्त की उपस्थिति के लिए पर्याप्त सुरक्षा लेगा, या यदि कथित अपराध गैर-जमानती है और न्यायालय ऐसा करना आवश्यक समझता है, तो अभियुक्त को ऐसे मजिस्ट्रेट के पास हिरासत में भेज देगा; और
>
> (ङ) किसी भी व्यक्ति को ऐसे मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित होने और साक्ष्य देने के लिए बाध्य करना।
>
> (2) <u>किसी अपराध के संबंध में उप-धारा (1) द्वारा न्यायालय को प्रदत्त शक्ति, किसी भी मामले में, जहां उस न्यायालय ने उप-धारा के तहत</u>

कोई शिकायत नहीं की है

(1) उस अपराध के संबंध में और न ही ऐसी शिकायत करने के लिए किसी आवेदन को अपास्त कर दिया गया, उस न्यायालय द्वारा प्रयोग किया जाएगा जिसके लिए ऐसा पूर्व न्यायालय धारा 195 की उपधारा (4) के अर्थ के तहत अधीनस्थ है।

(3) इस धारा के तहत की गई शिकायत पर हस्ताक्षर किए जाएंगे, -

(क) जहां शिकायत करने वाला न्यायालय उच्च न्यायालय है, वहां न्यायालय के ऐसे अधिकारी द्वारा जिसे न्यायालय नियुक्त कर सकता है;

[(ख) किसी अन्य मामले में, न्यायालय के पीठासीन अधिकारी द्वारा या न्यायालय के ऐसे अधिकारी द्वारा जिसे न्यायालय इस संबंध में लिखित रूप में अधिकृत कर सकता है।]

(4) इस खंड में, "न्यायालय" का वही अर्थ है जो धारा 195 में है।

32. यह उल्लेखनीय है कि संहिता की धारा 340 संहिता की धारा 195(1)(ख) में शामिल किसी भी अपराध की जानकारी प्राप्त होने पर न्यायालय द्वारा जांच शुरू करने और फिर मजिस्ट्रेट के समक्ष शिकायत दर्ज करने का प्रावधान करती है। अधिकार क्षेत्र रखने वाले प्रथम श्रेणी के. इसके अलावा, संहिता की धारा 340(2) के अनुसार, जहां संहिता की धारा 340(1) के तहत निर्धारित तरीके से न्यायालय द्वारा क्षेत्राधिकार रखने वाले मजिस्ट्रेट को कोई शिकायत नहीं की गई है, वह प्रदत्त शक्ति का प्रयोग स्वयं कर सकता है।

33. जहां तक जांच करने के लिए संहिता की धारा 340 के तहत आवश्यकता का प्रश्न है, यह तब अनावश्यक हो जाता है जब कथित अपराधों की जांच पुलिस द्वारा पहले ही कर ली गई हो और आरोप-पत्र पहले ही दायर किया जा चुका हो। एक शिकायत मामले और पुलिस रिपोर्ट पर स्थापित मामले के बीच एकमात्र अंतर सूचना का पहला बिंदु है, अर्थात, पहले में, यह मजिस्ट्रेट है, जबकि बाद में, यह पुलिस है। मामले की सुनवाई के दौरान अपनाई जाने वाली प्रक्रिया पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, भले ही यह किसी मजिस्ट्रेट की शिकायत पर स्थापित किया गया हो या पुलिस द्वारा दायर आरोप-पत्र पर लागू किया गया हो।

34. *रामनारायण एवं अन्य बनाम राजस्थान सरकार और अन्य 1988(2) आरएलडब्ल्यू 37* में प्रकाशित के मामले में दिए गए अपने निर्णय में इस न्यायालय ने माना है कि संहिता की धारा 195(1)(ख)(ii) का उद्देश्य दो परस्पर विरोधी निष्कर्षों को दो द्वारा दर्ज किए जाने की संभावना को समाप्त करना है। न्यायालय, अर्थात्, एक जिसके समक्ष दस्तावेज़ प्रस्तुत किया गया था और दूसरा जालसाजी की शिकायत की सुनवाई कर रहा था। वर्तमान तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में, यह निचली अदालतहै जिसने शिकायत की सुनवाई की होती अगर यह संहिता की धारा 340 के तहत निर्धारित तरीके से दायर की गई होती, और इसलिए, प्रक्रियात्मक अनियमितता मुकदमे को जारी रखने के लिए कोई उद्देश्य नहीं है जैसाकि उसने किया है अभियुक्त और उसके संभावित बचाव पर कोई प्रभाव नहीं।

35. इसके अलावा, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि याचिकाकर्ता या उसके साथियों ने शिकायतकर्ता के जाली हस्ताक्षर के साथ जमानत बांड दायर करके और उसके सॉल्वेंसी प्रमाणपत्र का दुरुपयोग करके अदालत में धोखाधड़ी करने की कोशिश की थी, इस न्यायालय का विचार है कि याचिकाकर्ता इस तरह के तर्क से मुकदमे को टाला या टाला नहीं जा सकता, भले ही दो विचार संभव हों।

36. नरेंद्र कुमार श्रीवास्तव (सुप्रा.) के मामले में याचिकाकर्ता द्वारा भरोसा किया गया निर्णय संहिता की धारा 195(1)(ख)(i) के तहत प्रतिबंध से संबंधित है, जो इस निर्णय के अनुसार स्वयं एक विशिष्ट श्रेणी से संबंधित है उन अपराधों को धारा 195(1)(ख)(ii) के तहत एक साथ जोड़ दिया गया है। इसलिए, उक्त निर्णय मौजूदा मामले के तथ्यों से स्पष्ट रूप से अलग है।

37. इस बात को ध्यान में रखते हुए कि याचिकाकर्ता ने न्यायालय को धोखा दिया है और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि उसकी तकनीकी दलीलें, जो इतने उत्साह से तर्क दी गई हैं, किसी भी सार से रहित हैं, इस न्यायालय को यह मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि वह मुकदमा चलाने के लिए उत्तरदायी है।

38. अतः विविध याचिका अपास्त की जाती है।

39. तदनुसार स्थगन याचिका भी अपास्त की जाती है।

(दिनेश मेहता), न्यायमूर्ति

131-Ramesh/-

टिप्पणी: इस निर्णय का हिन्दी अनुवाद निविदा फर्म **राजभाषा सेवा संस्थान** द्वारा किया गया है, जिसे फर्म के निदेशक डॉ. वी. के. अग्रवाल, द्वारा मान्य और सत्यापित किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन व कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।